PORT OF CHENNAI

WORKER'S PARTICIPATION IN MANAGEMENT

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी (Worker's Participation in Management)

आधुनिक युग में किसी भी व्यवसाय की सफलता केवल उरपके आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण पर ही निर्भर नहीं करती वरन् उसके सदस्यों की सहयोग की भावना पर भी निर्भर करती है । कर्मचारियों का सहयोग संतोष के वितरण अथवा निर्माण पर निर्भर करता है ।

व्यवसाय द्वारा कर्मचारियों को उनके कार्य के प्रतिफलस्वरूप पारिश्रमिक दिया जाता है । यह पारिश्रमिक अपने आप में संतोष नहीं होता अपितु यह संतोष का एक साधन मात्र होता है, और कर्मचारी सन्तोष प्राप्त करने के लिए पारिश्रमिक द्वारा प्राप्त धन का व्यवसाय से बाहर उपयोग करता है ।

यही बात व्यवसाय द्वारा प्रदान की गयी अवकाश बीमा पेप्शन तथा मनोरंजन की सुविधाओं के लिए भी लागू होती हैं । यह बात कुल आश्चर्यजनक लगती है, कि कर्मचारियों से अधिक उत्पादन कराने के लिए जो भी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, उन सुविधाओं द्वारा उत्पन्न होने वाला संतोष कर्मचारियों को अपना निश्चित कार्य करने के पश्चात् अन्य स्थितियों में पहुँचने पर ही मिलता है ।

उदाहरणार्थ, किसी व्यवसाय में प्रत्येक सप्ताह कर्मचारियों के मनोरंजन के लिए फिल्म दिखाने का आयोजन किया जाता है । फिल्म देखने का कार्य कर्मचारी द्वारा अपने पद से सम्बन्धित कार्यों को समाप्त करने के पश्चात् ही किया जाता है, अर्थात् कर्मचारी फिल्म देखने के लिए अवकाश काल में ही जाते हैं ।

इस प्रकार इस सुविधा द्वारा जो संतोष उत्पन्न हुआ, वह कर्मचारी के कार्य के समय के बाहर ही उत्पन्न हुआ है, और इसका परिणाम यह हो सकता है कि कार्य को कर्मचारी एक प्रकार का दण्ड माने और संतोष प्राप्त करने के लिए कार्य के बाहर साधनों की खोज करे ।

कर्मचारियों को कार्य द्वारा ही सन्तोष प्रदान करने के लिए प्रबन्ध सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है, और यह संतोष कर्मचारियों में व्यवसाय के प्रति अपनेपन की भावना उत्पन्न करके ही प्रदान किया जा सकता है ।

कर्मचारियों को प्रबन्ध के मामलों में भाग लेने का अधिकार देने से भी यह भावना उदय हो सकती है । औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी द्वारा कर्मचारियों में अपने कार्य को दण्ड मात्र मानने की भावना समाप्त हो जाती है, और उनकी सोई हुई शक्तियाँ व्यवसाय के हित में जागृत हो जाती हैं । कर्मचारी कार्य के समय को बन्धन न मानते हुए अपना एवं अपने परिवार का कार्य मानने लगता है ।

श्र मिकों की भागीदारी के अन्तर्गत श्रमिकों को प्रबन्ध की नीतियों एवं कार्यो की आलोचना करने एवं व्यवसाय के संचालन, उत्पादन तात्रिकताओं एवं कल्याण कार्यक्रमों में सुधार करने के लिए सुझाव देने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है । इस प्रकार प्रबन्ध और कर्मचारियों में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो जाता है, और वह सामूहिक रूप से अपने उद्योग के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करते हैं।

वास्तव में श्रमिकों की भागीदारी का अर्थ विभिन्न व्यवसायों एवं विभिन्न देशों में अलग-अलग समझा जाता है । किसी क्षेत्र की औद्योगीकरण की गति, औद्योगिक सम्बन्धों, प्रबन्ध की जागृति एवं प्रशिक्षण तथा श्रमिकों की जागरूकता के आहगर पर इस भागीदारी का स्तर एवं मात्रा निर्धारित की जाती है ।

उद्योगों में श्रमिकों को उत्पादन का साधन मानने के साथ-साथ यदि एक मानव भी माना जाय तो औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याएँ बड़ी सुविधा के साथ

हल की जा सकती हैं । वास्तव में औद्योगिक सम्बन्धों से तीन पक्ष-श्रम, प्रबन्ध एवं राज्य घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं ।

यदि प्रबन्ध और श्रम एक परिवार के रूप में कार्य करें तो राज्य की समस्याएँ इस सम्बन्ध में नाममात्र की रह जाती हैं । उद्योगों में सामूहिक पारिवार की भावना का उत्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके सदस्यों में यदि एकता की भावना उत्पन्न न हो सकी तो औद्योगिक शान्ति का वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकेगा और उद्योगों के उद्देश्यों की पूर्ति भी नहीं हो सकेगी ।

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की व्यवस्था औद्योगिक प्रजातन्त्र का मूल अंग मानी जाती है । श्रमिकों की भागीदारी का अर्थ विभिन्न प्रकार से समझा जाता है । प्रबन्ध इसका अर्थ निर्णय करने से पूर्व किये जाने वाले संयुक्त परामर्श से लेता है, दूसरी ओर श्रमिक भागीदारी का अर्थ सह-निर्णय एवं सह-निश्चय समझते हैं ।

सरकार एवं प्रकश विशेषज्ञ भागादारी को श्रम एवं प्रबन्धक का सहचर्य मानते हैं, जिसमें निर्णय करने का अंतिम अधिकार अथवा दायित्व सम्मिलित नहीं होता है । विश्लेषण के दृष्टिकोण से श्रमिकों की भागीदारी प्रबन्ध सम्बन्धी क्रियाओं से सम्बद्ध अधिकारों, दायित्वों के प्रतिनिधिकरण (Delegation) की एक प्रक्रिया होती है ।

इसके अन्तर्गत निर्णय करने में सत्ता की नीचे के श्रेणी के कर्मचारियों को भागीदार बनाया जाता है । कीथ डेविस के अनुसार, ”यह एक व्यक्ति का मानसिक एवं भावनात्मक अपने समूह के प्रति लगाव है, जो उसे उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है, तथा समूह के अन्तर्गत अपनी जिम्मेदारी भी समझता है ।”

मैमोरिया के अनुसार, ”यह एक संचार एवं परामर्श की औपचारिक एवं अनौपचारिक विधि है, जिसकी सहायता से संगठन के कर्मचारियों को सूचना दी जाती हैं, तथा वे इसके द्वारा अपनी सलाह पेश कर सकते हैं, और इस तरह से कर्मचारी प्रबन्धकीय निर्णयों में अपना योगदान देते हैं ।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के आहगर पर कर्मचारियों को प्रबन्ध में भागीदारी के निम्न लक्षणों की पहचान की जा सकती है:

(1) शारीरिक उपस्थिति की बजाए कर्मचारियों की मानसिक एवं भावनात्मक उपस्थिति होती है ।

(2) कर्मचारी प्रबन्ध में व्यक्तिगत रूप से भाग नहीं लेते हैं, बल्कि उनका प्रतिनिधि भाग लेता है ।

(3) प्रबन्ध में कर्मचारी की भागीदारी इस सिद्धान्त पर आधारित है, कि कर्मचारी का भाग्य कार्य के स्थान से जुड़ा हुआ है ।

(4) प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी औपचारिक एवं अनौपचारिक हो सकती है । दोनों ही परिस्थितियों में कर्मचारी को अपने विचार एवं परामर्श देने का अधिकार होता है ।

(5) कर्मचारी भागीदारी सामूहिक सौदेबाजी से भिन्न है ।

(6) **भागीदारी के चार स्तर हो सकते हैं:**

(i) कार्य के स्थान पर भागीदारी,

(ii) प्लांट के स्तर पर भागीदारी,

(iii) विभागीय स्तर पर भागीदारी, और

(iv) निगमीय स्तर पर भागीदारी ।

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागदारी से निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है:

(1) आर्थिक उद्देश्य (Economic Objectives):

इसमें नियोक्ता एवं कर्मचारियों के बीच सहयोग बढ़ता है, जिसके कारण उत्पादकता में भी वृद्धि होती है । उत्पादकता में वृद्धि कार्य सन्तुष्टि एवं अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार करके जा सकती है ।

(2) सामाजिक उद्देश्य (Social Objectives):

इसके अन्तर्गत उद्योग को एक सामाजिक संस्थान समझा जाता है, जिसमें प्रत्येक श्रमिक का अपना हित होता है । प्रबन्ध में भागीदारी से श्रमिकों का मान बढ़ता है, और समाज में उनकी इज्जत में भी वृद्धि होती है ।

(3) मनोवैज्ञानिक उद्देश्य (Psychological Objectives):

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी से उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है । श्रमिकों के अन्दर यह भावना उत्पन्न होती है, कि वे सभी संगठन का भाग हैं, तथा अपनी अमौद्रिक माँगों को पूरा कर लेते हैं ।

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी का महत्व (Importance of Workers' Participation in Management):

इसके निम्नलिखित लाभ हैं:

(1) आपसी समझ (Mutual Understanding):

भगिादारी (Participation) दो पक्षों को निकट लाती है, जिससे वे एक-दूसरे की समस्याओं को समझते है । परिणामस्वरूप, नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मद्यप अच्छी समझ एवं आपसी विश्वास की स्थापना की जा सकती है ।

(2) उच्च उत्पादकता (Higher Productivity):

प्रबन्ध और श्रम के मध्य सहयोग के कारण उत्पादकता में वृद्धि होती है, जिसके कारण उद्योग में लाभ की स्थिति भी सुधरती है । भागीदारी से कर्मचारियों को कार्य सन्तुष्टि तथा अभिप्रेरणा मिलती है, जिससे उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि होती है ।

(3) औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace):

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी में औद्योगिक विवादों में कमी आती है, तथा कर्मचारियों की संगठन के प्रति निष्ठा में वृद्धि होती है ।

(4) परिवर्तन का कम विरोध (Less Resistance to Change):

श्रमिक अधिकतर डर एवं उपेक्षा की वजह से परिवर्तन का विरोध करते हैं । जब श्रमिक प्रबन्धकीय निर्णयों के भागीदार बन जाते हैं, तो वे ऐसे परिवर्तनों का कम विरोध करते हैं ।

(5) सृजनात्मक एवं नवीनीकरण (Creativity and Innovation):

भागीदारी श्रमिकों को सोचने के लिए प्रोत्साहित करती है । इसकी सहायता से उनके गुण एवं योग्यता का प्रयोग किया जा सकता है ।

भागीदारी की असफलता के कारण (Causes of the Failure of Participation):

(1) संयुक्त परिषद् की सफलता के लिए दीर्घकाल में रहने वाले अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध आवश्यक हैं । भारत में अनुशासन संहिता (Code of Discipline) के होते हुए भी बहुत कम ऐसी औद्योगिक इकाइयाँ हैं, जिनमें हड़ताल, प्रदर्शन आदि न होते हों ।

(2) श्रमिकों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण की कमी के कारण श्रमिकों की भागीदारी केवल उत्पीड़न को व्यक्त करने की संस्था बन गई है, और जब इन परिषदों द्वारा श्रमिकों की सम्भावना के अनुसार उन्हें लाभ नहीं पहुँचता तो वे इन परिषदों को व्यर्थ की संस्था मानने लगते हैं ।

श्रमिकों में इन परिषदों के मूलभूत आदर्शों एवं उद्देश्यों को समझने की योग्यता नहीं है, और जब तक वे यह योग्यता अर्जित न कर लें उनकी भागीदारी द्वारा सम्भावित फल प्राप्त नहीं हो सकते ।

(3) भारत में श्रम संघों द्वारा संयुक्त परिषदों का विरोध किया जाता है । श्रम संघों के नेता यह मानते हैं, कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की स्थापना से उनके अधिकारों एवं महत्च को क्षति पहुँचती है । वे यह महसूस करते हैं, कि श्रमिकों की प्रबन्ध में भागीदारी धीरे-धीरे श्रमिकों पर से उनका प्रभाव

समाप्त कर देगी और श्रम संघ एवं नेताओं को महत्वहीन स्थिति में पहुँचा देंगी ।

(4) देश में अन्तर संघीय शत्रुता एवं वैमनस्यता भी संयुक्त प्रबन्ध परिषदों एवं कार्य समितियों की असफलता का कारण है ।

(5) कर्मचारियों के प्रतिनिधियों की अकुशलता एवं अयोग्यता भी भागदारी के असफल होने का कारण है ।

(6) कार्य स्थानों पर श्रम कानून के प्रावधानों के अनुसार कार्य किया जाता है, इसलिए श्रमिक भागीदारी की आवश्यकता को महसूस नहीं करते हैं ।

(7) उच्च स्तरीय निर्णयों में श्रमिकों को शामिल नहीं किया जाता है ।

(8) श्रम संघों के नेता राजनीतिक पार्टी से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए वे प्रबन्ध के साथ विचार-विमर्श में राजनीतिक हितों को सर्वोपरि रखते हैं ।

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी को सफल बनाने के लिए सुझाव (Suggestion for the Success of Workers' Participation in Management):

भागीदारी को सफल बनाने के लिए निम्न कदम उठाने चाहिए:

(1) सफल पक्षकारों के मध्य आपसी विश्वास होना चाहिए ।

(2) प्रबन्ध की सोच कर्मचारियों के प्रति अच्छी होनी चाहिए ।

(3) एक मजबूत एवं प्रजातांत्रिक यूनियन होनी चाहिए ।

(4) श्रम संघों तथा प्रबन्ध के बीच मधुर सम्बन्ध होने चाहिए ।

(5) भागीदारी प्रबन्ध के सभी स्तरों पर होनी चाहिए ।

(6) संगठन की संचार व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए ।

(7) दोनों पक्षों को सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ।

(8) सरकार एवं प्रबन्ध को श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए

(9) भागीदारी से होने वाले लाभों के प्रति दोनों पक्ष जागरूक होने चाहिए ।

आज के युग में उद्योग को एक सामाजिक संस्था की संज्ञा दी जा सकती है। प्रबन्धन, श्रमिक अथवा समाज सभी का .. हित, अलग-अलग कारणों से, इसी बात में है कि उद्योग की निरंतरता बनी रहे तथा वह और अधिक समृद्ध एवं विकसित हो।

डा० मेहत्रास (Dr. Mehtras) ने भागीदारी के बोध को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है-"यह उद्योग में लोकतांत्रिक प्रशासन का सिद्धान्त है जो प्रबन्धकीय क्रियाओं की सम्पूर्ण रेंज में, प्रबन्धन के सभी उपयुक्त स्तरों पर अपने उचित । प्रतिनिधियों द्वारा एक औद्योगिक संगठन के विभिन्न पदों पर निर्णय लेने के अधिकार को बाँटता (Sharing) है।"

भागीदारी का अर्थ है मिलकर कार्य करना। भागीदारी किसी व्यक्ति का सामहिक स्थिति में समह के साथ मानसिक एव भावानात्मक लगाव है जो उसे समूह के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योगदान करने के लिए प्रेरित करता है तथा जिम्मेदारिया को बाँटता है।

भागीदारी का मूल आधार वस्तुतः श्रमिक को एक ऐसा निर्णय में अपनी राय देने का हक प्रदान करना है जो भविष्य उसे प्रभावित करेगा। प्रबन्ध तंत्र अधिक प्रभावशाली रहता है। जबकि श्रमिक उपक्रम के मामलों में अपनी भागीदारी मात्र से ही प्रसन्न रहता है। विशेषतया जब श्रमिक कल्याण तथा कार्य परिस्थितियों जैसे मामलों पर निर्णय लिया जाना हो। यदि श्रमिक को कार्य परिस्थितियों आदि के बारे में निर्णय लेने का अवसर प्रदान किया जाये तो कम्पनी के उद्देश्यों और लक्ष्यों को आध प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

प्र बन्धन कार्यों में श्रमिकों की भागीदारी किसी भी रूप में हो सकती है। इसमें कर्मचारियों की कार्य समितियों का ग करके प्रबन्धन में उनकी भागीदारी स्थापित की जाती है।

प्रबन्धन में श्रमिक की भागीदारी का उद्देश्य/आवश्यकता (Objectives/Need for Worker's Participation in Management)

प्रबन्धन में श्रमिकों/कर्मचारियों की भागीदारी निम्नलिखित उद्देश्यों अथवा आवश्यकताओं के लिए प्राप्त की जा सकती है

1. उद्योग में उच्च उत्पादकता प्राप्त करने हेतु मानवीय कारकों और मानवीय सम्बन्धों को महत्व देने के लिए, श्रमिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए तथा औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए श्रमिकों की प्रबन्धन में भागीदारी आवश्यक है तथा प्रबन्धन के प्रत्येक स्तर पर विशेषतया प्लांट स्तर पर श्रमिकों का और अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए भी प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी आवश्यक है।

2. प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी उनके उच्च स्तरीय आवश्यकताओं जैसे सामाजिक तथा अहम् (egoistic) आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में मदद करता है। इस प्रकार की संतुष्टि, उच्च दक्षता एवं उत्पादकता के लिए प्रोत्साहन का कार्य करती है।

3. औद्योगिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त तथा कार्मिक प्रबन्धन के नये रूझान (Trends) भी प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी की आवश्यकता को महत्व देते हैं।

4. अधिकांश देशों में आजकल श्रमिक पढ़े लिखे तथा जानकार होते हैं और वे चाहते हैं कि उनके नये विचारों और सृजनात्मक पहल को प्रबन्धन तंत्र सुने और समझे और उन्हें अधिक जिम्मेदारी से काम करने की अनुमति प्रदान करे।

5. अब यह विचार तेजी से विकसित हो रहा है कि प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी उनका अधिकार है और औद्योगिक लोकत्र को बचाये रखने के लिए आवश्यक है।

6. श्रमिक असंतोष को समाप्त करने तथा आपसी समझ बनाने के लिए, जिससे कि उद्योग की उन्नति में अपनाये जाने वाले परिवर्तनों में श्रमिक विरोध का सामना करना पड़े भागीदारी आवश्यक है।

7. यह औद्योगिक अनुशासन बनाये रखने तथा श्रमिक फेरबदल व अनुपस्थिति को कम करने के लिए भी आवश्यक है। 8. यह श्रमिक/कर्मचारी की सृजनात्मकता का प्रयोग करती है तथा दायित्व को स्वीकार करने के लिए उत्साहित करता है।

प्रबन्धन में श्रमिक भागीदारी के प्रकार (Forms of Worker's Participation in Management)

प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी विभिन्न तरीकों से हो सकती है जो निम्न प्रकार है ।

(a) औपचारिक भागीदारी (Formal Participation)

(b) अनौपचारिक भागीदारी (Informal Participation)

उपरोक्त का विवरण संक्षेप में निम्न हैं

(a) औपचारिक भागीदारी (Formal Participation)

इसमें श्रमिकों और प्रबन्धकों के मध्य एक योजना (Plan) के अनुसार समन्वय तथा सहयोग किया जाता है। इसमें श्रमिकों और प्रबन्धकों के बीच कुछ सीमा तक कार्य प्रणाली तैयार कर ली जाती है, जो सामान्यतया संघों के माध्यम से अपनायी जाती है। श्रमिकों व प्रबन्धन निम्न योजनाओं पर मिलकर कार्य कर सकते हैं

(i) दुर्घटना से बचाव,

(ii) पदार्थ की बर्बादी (Waste) को रोकना तथा त्रुटियों (Defects) को शून्य स्तर (zero defect level) तक लाना,

(iii) श्रमिक की फेरबदल (Turnover) तथा अनुपस्थिति पर नियन्त्रण, तथा

(iv) कर्मचारी बीमा योजना आदि।

ये भागीदारी भी निम्न दो प्रकार की हो सकती है

(i) आरोही भागीदारी (Ascending Participation)

(ii) अवरोही भागीदारी (Descending Participation)

आरोही प्रकार की भागीदारी में श्रमिकों में से चने गये प्रतिनिधि प्रंबध की वार्ताओं में सम्मिलित होते हैं आर प्रबन्धन उच्च स्तरीय निर्णय लेने में अपना योगदान देते हैं। उदाहरणार्थ-बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की बैठक में भाग लेना। अवरोही प्रकार औद्योगिक प्रबन्धन एवं उद्यमियता विकास की भागीदारी में श्रमिकों के प्रतिनिधि अपना योगदान व सझाव स्वयं नियोजित करते हैं तथा शॉप फ्लोर पर अपने कार्य के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेते हैं।

श्रीमको को सामूहिक (Collective) भागीदारी निम्नलिखित रूप से प्राप्त की जाती है

(i) कार्य समितियों द्वारा (Through Works Committees) कार्य समितियों का प्रमुख कार्य श्रमिकों एवं प्रबन्धन के बीच अच्छे तथा मधुर सम्बन्ध बनाना तथा उन्हें बढ़ावा (Promote) देना है। यह समिति दोनों पक्षों के मतभेदों पर अपनी राय प्रस्तुत करती है और दोनों पक्षों के उभयनिष्ठ हितों में मध्य मतभेदों को सुलझाने का प्रयास करती है।

(ii) संयुक्त-परिषद द्वारा (Through Joint Councils)-संयुक्त परिषद, जिसमें श्रमिक और प्रबन्धक दोनों के प्रतिनिधि होते हैं, परस्पर सामान्यहित की बातों पर निर्णय लेते हैं जैसे दुर्घटना से बचाव, सुरक्षा-उपाय, उत्पादन मानकों का निर्धारण, श्रमिकों का शिक्षण/प्रशिक्षण तथा कर्मचारी कल्याण कार्यक्रम आदि

(iii) सूचनाओं के आदान-प्रदान द्वारा (Through Information Sharing)- इसके द्वारा श्रमिकों को कम्पनी की योजनाओं, नीतियों, वित्तीय स्थिति आदि के बारे में बताया जाता है।

(iv) कर्मचारी निदेशक द्वारा (Through Employee's Directorate)-इस भागीदारी में कर्मचारियों अथवा श्रमिकों में से चुना गया एक प्रतिनिधि बोर्ड ऑफ डायरेक्टरर्स का सदस्य होता है। श्रमिकों की व्यक्तिगत (Individual) भागीदारी निम्न रूप से प्राप्त की जा सकती है

(i) सुझाव प्रणाली (Suggestion System)–जिसमें श्रमिक को अपने निजी सुझाव देने का अधिकार होता है। ये प्राय: वे श्रमिक होते हैं जो अपने कार्य से सम्बन्धित सूक्ष्म से सूक्ष्म गहन जानकारी रखते हैं और सुझाव देने की योग्यता। हैं। इससे श्रमिक का आत्मविश्वास तथा मनोबल बढ़ता है तथा उसकी उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(ii) प्रतिनिधि मंडल और जॉब विस्तार (Delegation and Job Enlargement)-इसमें श्रमिकों को अपने स्वयं के कार्य निर्धारण का अधिकार दिया जाता है।

(b) अनौपचारिक भागीदारी (Informal Participation)

इस प्रकार की भागीदारी कार्यकारी समूह (working group) के स्तर पर होती है, जिसमें फोरमैन को अवसर प्राप्त होता है कि वह समस्या के समाधान (Problem solving) और निर्णय लेने (decision making) में अपनी भागीदारी बनाये। ये प्रायः ऐसे प्रकरण होते हैं जो फोरमैन/सुपरवाइजर के अधिकार कार्यक्षेत्र में आते हैं।

प्रबंधन में श्रमिक भागीदारी की सफलता की शर्ते (Conditions for the Success of Worker's Participation in Management)

प्रबंधन में श्रमिक भागीदारी की सफलता की प्रमुख शर्ते निम्न हैं

(i) भागीदार में हिस्सा लेने वाले श्रमिक स्पष्ट वक्ता होने चाहिये। वे सही ढंग से अपनी बात प्रबन्धन को समझाने के योग्य होने चाहिए।

(ii) प्रबन्धन और श्रमिकों में परस्पर विश्वास एवं सहयोग की भावना होनी चाहिए।

(iii) भागीदारी करने वाले श्रमिकों में समस्याओं को समझने की योग्यता हो, वह समस्या की जटिलता को समझे और परस्पर प्रभाव डाल सके। स कम्पनी के महत्वपूर्ण मामलों में, श्रमिक को भागीदारी एवं निर्णय लेने की अनुमति होनी चाहिए जैसे नई मशीनरी की खरीद, ऑपरेशन की नई विधियाँ आदि।

(v) विचार-विमर्श का स्तर स्वतंत्र एवं स्पष्ट होना चाहिए तथा कोई भी तथ्य छुपाकर नहीं रखना चाहिए।

(vi) किसी श्रमिक की भागीदारी का उसके कार्य तथा प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

(vii) विचार-विमर्श करते समय दोनों पक्षों को एक दूसरे के पक्ष का सम्मान करना चाहिए। केवल अपना स्वार्थ नही देखना चाहिए। उदाहरण के तौर पर नियोक्ता उत्पादन लागत कम करने के लिए न्यूनतम मजदूरी देना चाहिए जबाक श्रमिक अपने हितों की रक्षा के लिए अधिकतम मजदूरी एवं भत्तों की माँग करेगा। दोनों पक्षों को परस्पर सहयोग करके सम्मानजनक समाधान निकालना चाहिए।

 # 1. औद्योगिक सम्बन्ध का परिचय (Introduction to Industrial Relation):

औद्योगिक संगठन एक मानवीय संगठन है । इसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है, कि औद्योगिक संगठन में कार्यरत सभी मानवीय समूह एक-दूसरे से सम्बन्धित हों एवं आपसी सहयोग से कार्य करें । औद्योगिक सम्बन्ध, औद्योगिक अर्थव्यवस्था की देन हैं ।

साधारणतया औद्योगिक सम्बन्धों का अर्थ उन सभी प्रकार के सम्बन्धों से है, जो कि औद्योगिक वातावरण में विद्यमान होते हैं, औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने समाज को नियोक्ता एवं श्रमिक वर्ग में विभाजित कर दिया है, श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व श्रम-संघ के द्वारा एवं नियोक्ता का प्रतिनिधित्व प्रबन्ध-वर्ग के द्वारा किया जाता है ।

औद्योगिक सम्बन्धों का अर्थ श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के मध्य सम्बन्धों अथवा श्रम-संघों एवं नियोक्ता संगठन के मध्य सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है ।

इस प्रकार, नियोक्ता वर्ग एवं श्रमिक वर्ग के अस्तित्व के बिना, यह सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते । अत: औद्योगिक सम्बन्धों का अस्तित्व एक औद्योगिक संस्था अथवा संगठन के बिना भी सम्भव नहीं है ।

औद्योगिक सम्बन्धों की उत्पत्ति औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई है । औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ में नियोक्ता एवं श्रमिकों में प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत सम्बन्ध होता था । दोनों पक्षों में प्रत्यक्ष सम्बन्धों के कारण औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या न के बराबर थी ।

औद्योगीकरण एवं बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण दोनों पक्षों में यह प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाप्त हो गए । प्रारम्भ में सरकार भी इन सम्बन्धों में हस्तक्षेप नहीं करती थी । इसके परिणामस्वरूप कई औद्योगिक बुराइयों, जैसे कि कम मजदूरी, कार्य के अधिक घण्टे, कार्य की दशाओं का खराब होना, स्त्री एवं बाल मजदूरों का शोषण एवं श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार, आदि का जन्म हुआ ।

अत: श्रमिकों ने अपने हितों की रक्षा के लिए स्वयं को संगठित किया एवं श्रम संघों का उदय हुआ । अपने हितों की पूर्ति के लिए श्रमिक हड़तालों एवं नियोक्ता तालाबन्दी का सहारा लेने लगे ।

इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक संघर्षों में तेजी से वृद्धि हुई एवं उसका देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा । आज सरकार इन सम्बन्धों के नियन्त्रण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

इस प्रकार औद्योगिक सम्बन्ध अब केवल श्रम और प्रबन्ध के बीच सम्बन्ध नहीं रह गया है, बल्कि सरकार अथवा राज्य भी इसमें एक महत्वपूर्ण पक्षकार हैं । अत: औद्योगिक सम्बन्धों को श्रम, प्रबन्ध एवं सरकार के जटिल अन्तर्सम्बन्धों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है ।

 # 2. औद्योगिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि (Industrial Relations Background):

औद्योगिक सम्बन्ध औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना तथा अनुरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । भारत में यह अनेक चरणों से होकर गुजरा है । अनेक घटक-सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक भारत में औद्योगिक सम्बन्धों को प्रभावित कर चुके हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व श्रमिकों को 'hired तथा fired' किया जाता था क्योंकि न तो वे संगठित थे तथा न ही उनके संरक्षण के लिए कानून ही थे ।

सेवायोजक एक वर्चस्वकारी स्थिति में थे, कार्य परिस्थितियाँ निकृष्ट थीं तथा उनकी मजदूरी अत्यन्त नीची थी । नेताओं के प्रयासों के बावजूद भी जब ये परिस्थितियाँ जारी रहीं तो इन्होंने क्रांतिकारी आन्दोलनों का रूप ले लिया।

लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के अन्त तक श्रम संघ आन्दोलन नहीं उभर सकता था । Employers and Workmen (Disputes) Act, 1860 के अतिरिक्त श्रमिकों के हितों के संरक्षण हेतु शायद ही कोई कानून मौजूद था जिसको मजदूरी के विवादों को हल करने के लिए काम में लाया जाता था ।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद औद्योगिक सम्बन्धों ने एक नया आयाम धारण किया जब श्रमिकों ने हिंसा का तथा सेवायोजकों ने तालेबन्दी (Lockouts)

का सहारा लिया । 1928-29 के दौरान अनेक हड़ताल तथा दंगे एवं तोड़फोड़ देखने में आये ।

परिणामस्वरूप सरकार ने Trade Disputes Act, 1929 को लागू किया गया ताकि औद्योगिक विवादों के शीघ्र निपटान का बढ़ावा मिले । यह British Industrial Court (BIC) Act, 1919 पर आधारित था ।

Trade Disputes Act, 1929 BIC Act से भिन्न था क्योंकि यह विवादों के निपटान हेतु किसी स्थायी तंत्र व्यवस्था की बात नहीं करता था । वैसे यह देखा गया कि न तो केन्द्रीय सरकार और न ही राज्य सरकार ने इस कानून का पर्याप्त उपयोग किया ।

1938 में, तत्कालीन प्रचलित भयंकर औद्योगिक अशान्ति से निपटने के लिए बम्बई सरकार ने Bombay Industrial Relations (BIR) को लागू किया । पहली बार विवादों के निपटान हेतु लागू की गई एक स्थायी तंत्र व्यवस्था जिसे Industrial Court कहा गया ।

इसको BIR Act,1946 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो 1948, 1949, 1953 तथा 1956 में संशोधित किया जाता रहा । द्वितीय विश्व युद्ध के तुरन्त पश्चात् भारत ने अनेक समस्याओं का सामना किया जैसे रहन-सहन के स्तर की लागत में वृद्धि, अनिवार्य वस्तुओं की कमी, अधिक जनसंख्या वृद्धि दर, भारी बेरोजगारी, बढ़ती उत्पाती औद्योगिक सम्बन्ध परिस्थितियाँ, आदि ।

आधुनिक औद्योगिक समाज में 'औद्योगिक सम्बन्ध' एक जटिल समस्या है । औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या का जो उग्र रूप आज हम देख रहे हैं, प्राचीन समय में वह इतना भयानक नहीं था । औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या निश्चित रूप से बड़े पैमाने पर उत्पादन का परिणाम है ।

बढ़ती हुई मजदूरी की दरें, श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि के कारण श्रमिक वर्ग अच्छी शिक्षा तथा अधिक गतिशीलता प्राप्त करना चाहता है । श्रमिक आधुनिकतम मशीनों पर कार्य करते-करते मशीन का हिस्सा बनकर रह गया है, इसलिए उसमें आत्मगौरव और आत्म संतोष की भावना समाप्त हो गई है ।

आज वह औद्योगिक तनावों के बीच अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, अपने अधिकारों, आत्म-सम्मान एवं गौरव को प्राप्त करने के लिए वह पूँजीपति, सेवायोजकों से सघर्ष कर रहा है । इसलिए वर्तमान युग में अधिक औद्योगिक संघर्ष दिखाई देते हैं । इन सब समस्याओं का समाधान मधुर औद्योगिक सम्बन्धों के द्वारा ही किया जा सकता है ।

 # 3. औद्योगिक सम्बन्धों की परिभाषाएँ (Definition of Industrial Relations):

औद्योगिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं:

(1) एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के शब्दों में:

"औद्योगिक सम्बन्धों की अवधारणा राज्य तथा नियोक्ता के सम्बन्धों, श्रमिकों एवं उनके संगठनों का विस्तृत वर्णन है । इसलिए इस विषय के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्बन्ध, श्रमिकों एवं नियोक्ता के बीच कार्य-स्थल पर सामूहिक विचार-विमर्श, नियोक्ता एवं उनके संगठनों तथा श्रम-संघों के बीच सामूहिक-सम्बन्धों तथा इन सम्बन्धों के नियन्त्रण में सरकार की भूमिका, शामिल है ।"

(2) डेल योडर के अनुसार:

"औद्योगिक सम्बन्धों से आशय प्रबन्ध एव कर्मचारियों अथवा कर्मचारियो एवं उनके संगठनों के बीच उन सम्बन्धों से है जो रोजगार से उत्पन्न होते हैं ।"

(3) टीड एवं मेटकाफ के अनुसार:

"औद्योगिक सम्बन्ध, नियोक्ताओं और कर्मचारियों की पारस्परिक अभिवृत्तियों (Attitudes) एवं विचारधाराओ (Approaches) का संयुक्त परिणाम है, जिसे संगठन की क्रियाओं में न्यूनतम मानवीय प्रयत्नों व मतभेद, सहयोग की तव्र-भावना से, संगठन के सभी सदस्यों के उचित हितों को ध्यान में रखते हुए नियोजन, पर्यवेक्षण, निर्देशन और समन्वय हेतु अपनाया जाता है ।"

(4) ई.एफ.एल. ब्रीच के अनुसार:

"औद्योगिक सम्बन्ध और सेविवर्गीय सम्बन्ध पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु केवल इन अन्तर के साथ औद्योगिक सम्बन्धों में अच्छे सम्बन्धों को बढ़ावा देने के लिए कर्मचारी सम्बन्धों पर, अधिशासकीय नीतियों एवं क्रियाओं की तुलना में अधिक जोर दिया जाता है ।"

(5) बीथल, स्मिथ एवं अन्य के अनुसार:

"औद्योगिक सम्बन्ध प्रबन्ध का वह अंग है जो कि संगठन की मानव-शक्ति से सम्बन्धित है, चाहे वह मानव-शक्ति मशीन को चलाने वाली हो अथवा कुशल श्रमिक अथवा प्रबन्धक ।"

(6) जॉन टी. डनलप के अनुसार:

"औद्योगिक सम्बन्ध श्रमिकों, प्रबन्धकों तथा राज्य के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता को कहते हैं ।"

 # 4. औद्योगिक सम्बन्धों के लक्षण (Features of Industrial Relations):

औद्योगिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में कुछ महत्वपूर्ण लक्षण निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं:

(1) औद्योगिक सम्बन्ध शून्य में उत्पन्न नहीं होते (Do not Emerge in Vaccum) वरन् वे एक औद्योगिक ढाँचे में 'रोजगार सम्बन्धों' (Employment Relationship) से उभरते हैं । दो पक्षकारो की विद्यमानता

के बिना-श्रम तथा प्रबन्ध उत्पन्न नहीं हो सकता है । यह उद्योग ही होता है जो औद्योगिक सम्बन्धों के लिए वातावरण का सृजन करता है ।

(2) औद्योगिक सम्बन्धों को टकराव तथा सहयोग (Conflict and Co-Operation) दोनों द्वारा स्पष्ट किया जाता है । यह विपरीत सम्बन्धों का आधार होता है । अत: औद्योगिक सम्बन्धों को केन्द्रित कर रहे पक्षकारों द्वारा तर्क दिये जाने वाले विकसित व्यवहारों, सम्बन्धों, रुझानों तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन पर रहता है ताकि टकरावों एवं तनावों को समाप्त किया जा सके या उनको कम-से-कम न्यूनतम तो किया ही जा सके ।

(3) चूंकि श्रम तथा प्रबन्ध शून्य में काम नहीं करते वरन् एक व्यापक तंत्र के अंग होते हैं अत: औद्योगिक सम्बन्धों का अध्ययन व्यापक वायुमण्डलीय विषयों का भी समावेश करता है जैसे कार्य स्थल की प्रौद्योगिकी (Technology of the Work Place), देश का सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण, देश की श्रम नीति (Labour Policy), ट्रेड यूनियनों का रुझान, श्रमिकों तथा सेवायोजकों की

विचारधाराएँ ।

(4) औद्योगिक सम्बन्धों में श्रम-प्रबन्ध सहयोग के प्रति उपादेय परिस्थितियों तथा साथ-ही-साथ दोनो ही पक्षकारों से वांछनीय सहयोग को उजागर करने के लिए अपेक्षित व्यवहारों तथा प्रविधियों का अध्ययन शामिल है ।

(5) औद्योगिक सम्बन्ध कानूनों, नियमों नियम-विधानों समझौतों, न्यायालयों के निर्णयों, परम्पराओं तथा रीतियों और साथ ही साथ श्रम तथा प्रबन्ध के बीच सहयोग को सामने लाने के लिए सरकार द्वारा व्यवस्थित नीति ढाँचे का अध्ययन करते हैं ।

इसके अतिरिक्त, यह श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों के नियंत्रण में प्रशासकीय तथा न्यायिक (Executive and Judiciary) के व्यवधान पैटर्नों (Interference Pattern) की एक गहन समीक्षा भी करते हैं ।

 # 5. औद्योगिक सम्बन्धों के उद्देश्य (Objectives of Industrial Relations):

औद्योगिक सम्बन्धों का मूल उद्देश्य श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना है ।

सक्षेप में, औद्योगिक सम्बन्धों के उद्देश्य अग्र प्रकार हैं:

(1) औद्योगिक शान्ति की स्थापना करना । (To Establish Industrial Peace.)

(2) श्रमिकों एवं प्रबन्धों के हितों की रक्षा करना । (To Protect Interest of Workers and Management.)

(3) औद्योगिक विवादों की रोकथाम करना । (To Prevent Industrial Disputes.)

(4) उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना । (To Raise Production Capacity)

(5) औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करना । (To Establish Industrial Democracy.)

(6) पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न करके अधिकतम रोजगार प्राप्त करना । (To Raise Full Employment Position.)

(7) श्रम-बदली तथा अनुपस्थिति दर में कमी करना । (To Lesser the Labour-Turnover and Absenteeism-Rate)

(8) उचित मजदूरी एव अच्छी कार्य-दशाएं प्रदान करके हड़ताल, तालाबन्दी तथा घिराव आदि कम करना । (To Eliminate Strikes, Lockout, Gheraos etc. by Providing Reasonable Wages and Good Working Conditions.)

(9) श्रमिकों के आर्थिक, सामाजिक हितों की रक्षा करना । (To Protect Workers Economics and Social Interests.)

(10) सार्वजनिक हित की दृष्टि से घाटे में चल रहे एवं रुग्ण उद्योगों पर राजकीय नियन्त्रण स्थापित करना । (To Establish Government Control over Sick Industrial Units and Unit Incurring Losses in Public Interest.)

(11) सार्वजनिक हित में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण करना । (Nationalization and Socialization of Industries of Public interest.)

(12) देश की अर्थव्यवस्था के विकास में उच्च उत्पादकता के माध्यम से योगदान देना । (To Contribute in Development of the Country's Economy through High-Production.)

 # 6. औद्योगिक सम्बन्धों के सिद्धान्त (Principles of Industrial Relations):

औद्योगिक सम्बन्धों के सिद्धान्त श्रमिक वर्ग तथा नियोक्ता के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करते हैं । जब तक इन दोनों वर्गों सम्बन्ध मधुर नहीं बनाये जाएंगे उस समय तक कोई भी सिद्धान्त प्रभावी नहीं होगा । इसलिए सिद्धान्त ऐसे होने चाहिए जिनका पालन करने से जल्दी से जल्दी इन दो वर्गों के बीच आपसी मनमुटाव समाप्त हो सकें तभी संगठन में अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों का निर्माण हो सकेगा ।

औद्योगिक सम्बन्ध के प्रमुख औद्योगिक सिद्धान्त निम्न हैं:

(1) औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करना (To Establish Industrial Democracy):

अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के लिए औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करना आवश्यक है । इसके लिए कर्मचारियों को प्रबन्ध में भागीदार बनाकर उनका सहयोग प्राप्त करना चाहिये ।

(2) दोनों वर्गों के संघों के बीच आपसी तालमेल की स्थापना (To Create Mutual Relation between Trade Unions and Employers Union):

जब तक श्रम संघ तथा नियोक्ता सघों के बीच आपसी तालमेल विचारों का आदान-प्रदान नहीं होगा उस समय तक औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नहीं हो सकते इसी कारण इन दोनों वर्गों के बीच विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक है ।

(3) श्रम संघ तथा नियोक्ता संघ परस्पर अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के इच्छुक हो:

जब तक श्रम संघ तथा नियोक्ता संघों की इच्छा संगठन में अथवा देश में अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने की नहीं होगी उस समय तक अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते । इसके लिए प्रबन्धकों को श्रमिकों की भर्ती, चुनाव करने की विधियाँ, प्रशक्षण, मजदूरी, कार्य करने की दशाएँ, पदोन्नति आदि को बेहतर बनाना चाहिए ।

(4) कर्मचारियों को मान्यता देना (Importance given to Personnel):

संगठन में कर्मचारियों को पदानुसार मान्यता देनी चाहिए जैसे, "प्रबन्धक के बिना श्रमिक वर्ग उसी प्रकार बेकार सिद्ध होंगे जिस प्रकार श्रमिक के बिना प्रबन्धक ।" जब श्रमिकों को अधिक मान्यता दी जायेगी तो संगठन में हड़ताल, घिराव, तोड़फोड़, कार्य के प्रति लापरवाही, अधिक अनुपस्थिति, आदि सब समाप्त हो जायेंगे तथा अच्छे सम्बन्धों का निर्माण होगा ।

(5) सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining):

यदि संगठन में कोई श्रम-विवाद उत्पन्न हो जाये तो उनका समाधान सामूहिक सौदेबाजी से करना चाहिए । यह प्रणाली अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों में सहयोग प्रदान करती है ।

 # 7. औद्योगिक सम्बन्धों का महत्व (Importance of Industrial Relations):

प्रत्येक निर्माणी संस्था का मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर अधिक-से-अधिक ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है । एक संस्था अपने इस उद्देश्य में तभी सफल हो सकती है जब उद्योग में शांति व्यवस्था बनी रहे और संस्था का उत्पादन कार्य निरन्तर चलता रहे ।

मशीनें, यन्त्र व सामग्री निर्जीव होते हैं बिना श्रमिकों के प्रयत्नों के ये उपयोगिता वाले पदार्थो में परिवर्तित नहीं हो सकते । उत्पादन के लिए श्रमिकों का सहयोग आवश्यक है । इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्था की कार्यकुशलता एवं सफलता के लिए मधुर औद्योगिक सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक हैं ।

श्रमिकों की समस्या औद्योगिक क्रान्ति का विषैला शिशु है । श्रमिक, उत्पादन के अन्य सभी घटकों से अलग घटक है । वह एक जीवित प्राणी है जो अन्य अचेतन घटकों को प्रभावित करता है । किसी भी क्रिया को सफल बनाने के लिए श्रमिकों की समस्या को समझना चाहिए । कर्मचारियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ।

यदि कोई उत्पादन योजना मानवीय तथ्यों पर अधारित नहीं है तो वह प्रभावहीन सिद्ध होगी । उद्योग में नियोक्ता, कर्मचारी सम्बन्ध का महत्व अब उतना विस्तृत हो गया है कि वित्त, उत्पादन के साथ-साथ कर्मचारी को भी उतना ही महत्व दिया जाता है ।

कर्मचारी वर्ग प्रबन्धक से निम्न आशाएँ रखता है:

(1) मानवीय साधनों का उपभोग:

प्रबन्धक तभी किसी कर्मचारी से अधिक कार्य ले सकता है, जबकि उसमें निर्णय लेने की क्षमता हो ।

(2) प्रत्येक कर्मचारी का अधिकतम विकास: कर्मचारी के विकास का उत्तरदायित्व प्रबन्धक पर होता है ।

(3) संघर्ष तथा विरोध को शीघ्रता से समाप्त किया जाए ।

कर्मचारी वर्ग अपने श्रम के बदले निम्न सुविधाएं प्राप्त करना चाहता है:

a. अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति:

प्रत्येक कर्मचारी प्रबन्धक से अपने लिए मकान, कपड़ा, भोजन आदि की व्यवस्था करना चाहता है ।

b. सुरक्षा:

प्रत्येक कर्मचारी अपने पद पर बने रहने की सुरक्षा चाहता है ।

c. आत्मविश्वास:

प्रत्येक कर्मचारी अपने आत्मविश्वास के लिए पदोन्नति के अवसर भी चाहते हैं ।

d. स्तर:

कर्मचारी का सामाजिक स्तर, उसके कार्य स्तर से प्रभावित होता है । इसी कारण वह कार्य स्तर से सन्तुष्टि चाहता है ।

 # 8. औद्योगिक सम्बन्धों के निर्धारक घटक (Factors Determining Industrial Relations):

मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन करना आवश्यक है:

(i) प्रबन्ध तथा श्रमिक वर्ग के साथ बराबरी के आधार पर विचार-विमार्श होना आवश्यक है ।

(ii) मजबूत, स्वतन्त्र जनतन्त्र पर आधारित श्रम संघ तथा नियोक्ता संघों का निर्माण करना ।

(iii) लई औद्योगिक सौदेबाजी या शान्तिमय समाधान की व्यवस्था करना

(iv) सामान्य जनता की श्रमिकों के प्रति सहानुभूति होना ।

(v) सरकार द्वारा उचित श्रम प्रमापों का निर्धारण किया जाना ।

(vi) श्रमिकों की बड़ी हुई उत्पादकता के लाभों में श्रमिकों तथा सेवायोजक को बराबर हिस्सा देना ।

(vii) संगठन के सेवायोजकों और श्रमिकों के मध्य निरंतर संचार की व्यवस्था करना ।

(viii) श्रमिकों को सभी स्तरों पर शिक्षा प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

(ix) सेवायोजकों के द्वारा श्रम कल्याण में कार्य किया जाना ।

(x) सेवायोजकों के द्वारा श्रमिकों को संगठन मे उचित मान्यता प्रदान करना ।

 # 9. खराब औद्योगिक सम्बन्धों के कारण (Causes of Poor Industrial Relations):

औद्योगिक सम्बन्धों का दृश्य संतोषजनक नहीं है । हड़ताल, तालाबंदी, घिराव इत्यादि रोजाना देखने को मिलते है ।

बहुत से कारण इसके लिए जिम्मेदार हैं जो कि:

1.आर्थिक,

2. संगठनात्म,

3. सामाजिक,

4. मनोवैज्ञानिक, और

5. राजनीतिक हो सकते हैं ।

1. आर्थिक कारण (Economic Causes):

प्रबन्ध एवं श्रम के बीच खराब सम्बन्धों का मुख्य कारण कम मजदूरी एवं खराब कार्य दशाओ का होना है । आर्थिक कारणों में-मजदूरी से अनाधिकृत

कटौती, फिरिन्ज बैनीफिट की कमी, पदोन्नति के अवसरों की कमी, प्रेरणात्मक मजदूरी का न होना इत्यादि शामिल हैं ।

2. संगठनात्मक कारण (Organisational Causes):
दोषपूर्ण संचार व्यवस्था, ट्रेड यूनियन को मान्यता न देना अनुचित व्यवहार श्रम कानूनों का उल्लघन आदि ऐसे संगठनात्मक कारण है, जिनके कारण औद्योगिक सम्बन्ध खराब होते हैं ।

3. सामाजिक कारण (Social Causes):
कार्य के प्रति असन्तुष्टता, मान-सम्मान में कमी समाज मे संघर्ष, संयुक्त परिवार में दरार आदि ऐसे कारण हैं, जो खराब औद्योगिक सम्बन्धों को बढ़ावा देते हैं ।

4. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes):
कार्य के प्रति असुरक्षा की भावना, मैरिट को महत्व न देना, कार्य निष्पादन को महत्व न देना इत्यादि कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण है जिनसे औद्योगिक सम्बन्ध खराब होते हैं ।

5. राजनीतिक कारण (Political Factors):
ट्रेड यूनियनों की राजनीतिक प्रकृति, बहु-संघों का होना, अन्तर्यूनियन दुश्मनी आदि ट्रेड यूनियन मूवमैंट को कमजोर करते हैं । मजबूत यूनियन की अनुपस्थिति में सामूहिक सौदेबाजी कमजोर पड़ जाती है, जिसके कारण नियोक्ता प्रबन्ध कर्मचारियों को दबाते हैं, जिसके कारण प्रबन्ध एवं श्रम में सम्बन्ध खराब होते हैं ।

 # 10. बुरे औद्योगिक सम्बन्धों का प्रभाव (Effects of Bad Industrial Relations):
उद्योग की कार्यकुशलता व सफलता में मधुर औद्योगिक सम्बन्धों का विशेष महत्व होता है । यदि किसी संस्था मे औद्योगिक सम्बन्ध मधुर नहीं

हैं तब वहाँ औद्योगिक अशांति उत्पन्न हो सकती है तथा हड़ताल एवं तालाबन्दी तक की स्थिति आ जाती है ।

इसका नियोक्ता पर तो प्रभाव पडता ही है, श्रमिक उपभोक्ता और समाज भी उसके बुरे प्रभाव से बच नहीं पाते । इन्हें तो वास्तव में भारी हानि उठानी पड़ती है ।

औद्योगिक संघर्ष के कारण होने वाले मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं:

(1) उद्योग पर प्रभाव (Effect on Industry):

औद्योगिक सम्बन्ध खराब होने से संस्था में औद्योगिक अशांति उत्पन्न हो जाती है जिससे संस्था में उत्पादन कार्य रुक जाता है । संस्था के साधन बेकार पड़े रहते हैं । उत्पादन रुक जाने से ग्राहकों के आदेश समय पर पूरे नहीं हो पाते तथा बड़ी संख्या में ग्राहक टूट जाते हैं जिन्हे बाद में प्राप्त करना सरल नहीं होता ।

(2) श्रमिकों पर प्रभाव (Effect of Workers):

औद्योगिक अशांति का सबसे बुरा प्रभाव श्रमिकों पर पड़ता है । श्रमिकों को हड़ताल के दिनों के वेतन की हानि तो होती ही है, कई बार उन्हें रोजगार से भी हाथ धोना पड़ता है । हड़ताल लम्बी हो जाने पर वेतन समय पर नहीं मिलता जिससे श्रमिक व उसके परिवार को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं । औद्योगिक अशांति के कारण समाज को अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती और संस्था व समाज इस अवस्था का दोष श्रमिकों को देते हैं जिससे इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचता है ।

(3) समाज पर प्रभाव (Effect of Society):

समाज को उपभोक्ताओं के रूप में हानि उठाने के अतिरिक्त भी बहुत अधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं माल रुक जाने से बाजार में उत्पादन की कमी हो जाती है । श्रमिकों को वेतन न मिलने के कारण वह परिवार को दुखों से बचाने के लिए लूटमार करते हैं जिससे अशाति का वातावरण बन जाता

है । औद्योगिक अशांति दूर करने के लिए पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है । इस झगड़े में कुछ श्रमिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है जिससे उनके परिवार बेसहारा हो जाते हैं ।

(4) उपभोक्ता पर प्रभाव (Effect of Consumers):

औद्योगिक अशांति के कारण उत्पादन रुक जाता है जिससे उपभोक्ता अपने आवश्यकता की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में क्रय नहीं कर पाते, साथ ही उत्पादन गिर जाने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है और उत्पादन की किस्म में गिरावट द्वारा मूल्य स्तर बनाये रखने का प्रयास किया जाता है, जिससे उपभोक्ताओं का जीवन-स्तर काफी निम्न हो जाता है ।

(5) अंशधारियों पर प्रभाव (Effect on Shareholders):

औद्योगिक असंति से उत्पादन रुक जाने के कारण संस्था को लाभ प्राप्त नहीं होता । साधन बेकार पड़े रहते हैं तथा स्थिर व्ययों का भार पूर्ववत बने रहने के कारण कई बार बहुत भारी हानि हो जाती है । संस्था में लाभ न होने के कारण अंशधारियों तथा मालिकों को लाभांश प्राप्त नहीं होता ।

(6) सरकार पर प्रभाव (Effect on Government):

औद्योगिक संघर्ष के कारण संस्थाओं का लाभ गिर जाता है जिससे सरकार को कर के रूप में कम आय होती है । इतना ही नहीं, औद्योगिक संघर्षों से नियोक्ताओं के विश्वास को धक्का पहुँचने के कारण सरकार को नियोक्ताओं से उद्योगों में पूँजी आकर्षित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। साथ ही जनता की माँग को पूरा करने के लिए आयात किया जाता है जिसके लिए देश की सरकार को विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करनी पड़ती है । वर्तमान में यह स्वीकार किया गया है कि "प्रबन्ध के बिना श्रमिक उसी प्रकार बेकार सिद्ध होंगे जिस प्रकार श्रमिक के बिना प्रबन्धक" |

अत: स्पष्ट है कि औद्योगिक सम्बन्धों का ठोस आधार औद्योगिक शान्ति की स्थापना करना है । औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या का प्रभावशाली

समाधान दोनों वर्गो के बीच आपसी सम्बन्ध विश्वास और निर्भरता को जगाना है ।
दोनों ही वर्ग अतिरेक (Surplus) के विभाजन पर नजर न रखकर उसके आकार और मात्रा के बढ़ने पर ही हमान दें । लाभ के बढ़ने पर ही औद्योगिक विकास मालिक का लाभांश तथा श्रमिको की मजदूरी निर्भर करती है ।

यदि दोनों ही पक्ष अपने संकुचित स्वार्थ के घेरे में घूमते रहेंगे तो संस्था का विकास असम्भव हो जायेगा । इसलिए दोनों ही पक्षों को स्वार्थ के स्थान पर सहयोग का मार्ग अपनाना होगा । अपने हितों की आहूति संस्था के विशाल एवं सामूहिक हितों के लिए देनी होगी । प्रबन्ध का कोई भी सिद्धान्त चाहे वह कितना भी अच्छा क्यों न हो, किसी के हितों की कीमत पर लागू नहीं करना चाहिए ।

चाहे कितनी भी श्रेष्ठ सामग्री, यन्त्र औजारों का उपयोग किया जाए और उत्पादन की सर्वोत्तम विधि अपनाई जाए; जब तक श्रमिकों में कर्तव्य पालन की भावना नहीं आयेगी तब तक इन सब विधियों का सदुपयोग सम्भव नहीं हो सकता है ।

इस सम्बन्ध में हण्ट ने अपने विचार को इस प्रकार परिभाषित किया है:
"सुन्दर तथा नए औजारों और यन्त्रों का प्रयोग तब ही सुखद परिणाम दे सकता है जब पूँजीपति और श्रमिको के मानवीय सम्बन्ध मजबूत हों, तथा उनके बीच बढ़ती खाई को पाटा जा सके ।"

 # 11. अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की आवश्यक शर्तें (Conditions for Good Industrial Relations):
अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध औद्योगिक विकास का मूल आधार है । औद्योगिक संघर्ष किसी संगठन में अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की अनुपस्थिति के प्रतीक हैं, जिससे कि देश, उद्योग समाज, प्रबन्धकों एवं श्रमिकों सभी के हितो पर बुरा प्रभाव पडता है । अत: यह आवश्यक है कि

श्रम-प्रबन्ध में अच्छा सहयोग हो । अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए श्रमिकों, नियोक्ताओं एवं सरकार सभी का संयुक्त उत्तरदायित्व है ।

अच्छे एवं मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है:

(1) प्रबन्धकों एवं श्रमिकों का एक-दूसरे के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए । यदि प्रबन्धक श्रम-संघ को एवं श्रम-संघ प्रबन्धकों को स्वीकार नहीं करेंगे तो मधुर एवं अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की उम्मीद नहीं की जा सकती । अत: आवश्यक है कि प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों को संगठन में बराबरी का स्थान दिया जाए एवं प्रबन्ध में भागीदारी/सहभागिता को लागू किया जाए ।

श्रमिकों की प्रबन्ध में सक्रिय/सहभागिता मात्र औपचारिकता न होकर सक्रिय एवं रचनात्मक होनी चाहिए एवं इसका कार्यक्षेत्र भी स्पष्ट होना चाहिए । इस योजना से मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना को बढ़ावा मिलेगा ।

(2) औद्योगिक सम्बन्धों के दोनों पक्षों मे खुला एवं स्वतन्त्र द्वि-पक्षीय सम्प्रेष/संदेशवाहन होना चाहिए ।

(3) नियोक्ताओं को श्रम-कल्याण के कार्यों एवं इससे सम्बन्धित योजनाओं के प्रति जागरूक एवं उत्सुक होना चाहिए । उन्हें इन योजनाओं को लागू करने की पहल करनी चाहिए ।

(4) नियोक्ताओं द्वारा ऐसी नीति को अपनाया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत बड़ी हुई उत्पादकता में श्रमिको तथा नियोक्ताओं को बरबार का हिस्सा मिले । उद्योगो में श्रमिकों के लिए लाभों में हिस्सेदारी (Profit Sharing) की योजना को भी लागू किया जाना चाहिए ।

वर्तमान में भी उद्योग में स्वामित्व की भावना उत्पन्न करने के लिए कुछ बड़ी संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को अंशों का निर्गमन करते समय उन्हें अंशों का आबंटन कर रही हैं । किन्तु बहुत से श्रमिक एवं कर्मचारी धन के अभाव में अंशों को क्रय नहीं कर पाते ।

अत: श्रमिकों अथवा कर्मचारियों के पास पर्याप्त धन न होने पर उन्हें अंश क्रय करने के लिए भविष्य-निधि अथवा प्रॉवीडेन्ट फण्ड में धन दिया जाना चाहिए । यह योजना श्रमिकों में स्वामित्व की भावना पैदा करने एवं औद्योगिक सबन्धों को मधुर बनाने में सहायक होगी ।

(5) नियोक्ता द्वारा श्रमिकों के सभी स्तरों पर उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

(6) प्राय: एक उद्योग में एक से अधिक श्रम-संघ होते हैं । इससे श्रम-संघों में आपसी तनाव एवं मतभेद उत्पन्न होते हैं एवं नियोक्ताओं के साथ किए जाने वाले समझौतों से समस्याएँ पैदा होती हैं । इस समस्या से निपटारे के लिए उपाय है कि एक उद्योग में एक ही श्रम-संघ की व्यवस्था होनी चाहिए तथा नियोक्ता को केवल मान्यताप्राप्त संघ से ही समझौता करना चाहिए ।

(7) कारखाने के सभी स्तरों पर अच्छे मानवीय सम्बन्धों की स्थापना पर बल दिया जाना चाहिए ।

(8) श्रमिकों के हितों को प्रभावित करने वाले निर्णय की जानकारी प्रदान करने के लिए पर्याप्त सन्देशवाहन की व्यवस्था होनी चाहिए ।

(9) औद्योगिक विवाद अधिनियम, (Industrial Disputes Act, 1947) में औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए न्यायिक व्यवस्था की गई है । लेकिन विवादों का शीघ्र निपटारा नहीं हो पाता । इसके फलस्वरूप श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों में कटुता बनी रहती है । सरकार द्वारा श्रम-प्रबन्ध से

सम्बन्धित मामलों में शीघ्र न्याय दिलाने एवं विवादों के निपटारे की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

(10) उद्योग में अधिकतर विवाद वेतन, मजदूरी व महँगाई भत्ते आदि समस्याओं के कारण होते हैं । अत: इनके सन्दर्भ में सरकार द्वारा राष्ट्रीय नीति बनायी जानी चाहिए इससे औद्योगिक विवादो में कमी आएगी एवं औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार होगा ।

(11) सुदृढ़ (Strong), जिम्मेदार (Responsible), तथा जनतन्त्र पर आधारित (Based on Democracy) श्रम संघ तथा नियोक्ता संघों का होना

(12) श्रमिकों एवं प्रबन्धकों का औद्योगिक समस्याओं के समाधान के लिए सामूहिक सौदेबाजी एवं अन्य शान्तिपूर्ण तरीकों में विश्वास होना चाहिए ।

(13) सरकार द्वारा उचित श्रम-मानकों का निर्धारण किया जाना चाहिए ।

(14) औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिए श्रम-संघों से किए गए समझौतों को लागू करने की व्यवस्था करना ।

(15) मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम-सम्मेलनों का आयोजन किया जाना चाहिए । इन सम्मेलनों में प्रबन्धकों एवं श्रमिकों अथवा कर्मचारियों की समस्याओं की जानकारी मिलती है ।

इन सम्मेलनों में श्रमिकों प्रबन्धकों एवं सरकार के प्रतिनिधि होते हैं, जिससे कि उन समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जा सकता है, एवं रचनात्मक निर्णय लिए जा सकते हैं ।

****